अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २१ अगस्त - २०२१ प्रकाशन - ०८

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

अगस्त २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1,	श्लोक	07
2.	पू. गुरुजी का संदेश	08
3.	वेदान्त लेख	14
4.	दृग्दृश्य विवेक	22
5.	गीता चिन्तन	30
5.	श्री लक्ष्मण चरित्र	48
6.	जीवन्मुक्त	54
7.	कथा	60
8.	मिशन-आश्रम समाचार	66
9.	इण्टरनेट समाचार	96
10	आगामी कार्यक्रम	97
11	लिन्क	98

अगस्त 2021

तपोभिः क्षीण पापानां
शान्तानां वीतरागिणाम्।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयं
आत्मबोधो विधीयते।

(आत्मबोध श्लोक : 1)

जिन्होंने अपने पापों को तप के द्वारा क्षीण किया है तथा जिसका मन शान्त और रागादि दोषों से रहित है, ऐसे मोक्ष के इच्छुक साधकों के लिए आत्मबोध ग्रंथ की रचना की जा रही है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

धर्माचरण – प्रथम लक्ष्य

वेदान्त का अधिकारी वह होता है जो जीवन की अनेकानेक अनुभूतियों के प्रति गम्भीर होता है, उसके रहस्य जानने का इच्छुक है। अनुभूति के रहस्य की गहराई में जाकर उसे समझने की प्रेरणा ही वेदान्तज्ञान की पात्रता देता है।

हर व्यक्ति के जीवन में अनुभूति का महत्व होता है, क्योंकि उससे ही कृतार्थ व पूर्ण होने की धारणा विद्यमान है। इसलिए सतत अपनी अनुभूति को अच्छी बनाने

धर्माचरण – प्रथम लक्ष्य

का प्रयास करता है। उसीके लिए बाह्य जगत में भी अनुकुलता उत्पन्न करने हेतु प्रयास करता है तथा अपने मनादि में भी गुणादि के द्वारा अनुकुलता उत्पन्न करता है। प्रत्येक अनुभूति सुन्दर और सुखद हो यही उसकी कामना होती है।

अनुभूति सुखद व सुन्दर होनी चाहिए उसकी कला धर्मशास्त्र देता है। अतः चार पुरुषार्थों में प्रथम स्थान पर धर्म रखा। जहां अर्थ–काम पुरुषार्थ की सिद्धि धर्म को ही आधार बनाकर किया जाना चाहिए। धर्म से अपने तथा अन्य के लिए सुखमय वाता बना सकते है। धार्मिक व्यक्ति अपने परिवेश में समस्त प्रकृति,

'धर्मशास्त्र सुखद और सुन्दर अनुभूति की कला सीखाता है।'

धर्माचरण – प्रथम लक्ष्य

पितृ, देवतादि सब के प्रति आत्मयीता से सुखमय वातावरण बनाने का प्रयास करता है। संवेदनशीलता, भावना, करुणादि से युक्त होते हुए, सब की स्वतंत्रता का आदर करते हुए, यथावत निरपेक्षता से स्वीकृति का सामर्थ्य होता है। सब की स्वीकृति होने से मन शान्त, प्रसन्न व निरपेक्ष होता जाता है। हर परिस्थिति में राग-द्वेष, प्रतिक्रिया, आग्रहादि समाप्त होकर, समत्व से युक्त होते है-ऐसी दृष्टि धर्मशास्त्र सीखाता है। धर्मशास्त्र के प्रति श्रद्धा रखकर जीनेवाले का सतत विकास होता जाता है। सब की सेवा यथासम्भव शान्त रहकर सेवा करना यह योगयुक्त होना है। यह कर्मक्षेत्र की सब से महान सिद्धि है। ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण धर्म

'धर्मनिष्ठ की सन्निधि में सब स्वयं को सुखी व सुरक्षित अनुभव करते है।'

धर्माचरण – प्रथम लक्ष्य

से होता है।

इस प्रकार धर्मशास्त्र की कृपा से, ऐसे आचरण से सतत सुखद अनुभूति होने लगती है। सुखद अनुभूति की कला हस्तगत हो यह हमारा प्रथम लक्ष्य होता है। ईश्वर के एहसास से, उनकी महिमा के ज्ञान से धर्माचरण सुगम होता जाता है। सर्वव्यापी ईश्वर को हृदय में रखकर सतत उनकी अर्चना व सेवा करें। उससे मन शान्त सुन्दर होता जाता है, व सतत अनुभूति सुन्दर होती जाएगी।

'अनुभूति के रहस्य को समझने पर ही वेदान्त के ज्ञान का अधिकारित्व प्राप्त होता है।'

धर्माचरण – प्रथम लक्ष्य

ऐसे सुखद अनुभूति से युक्त शान्त, प्रसन्न व विचारशील, ईश्वरभक्ति से युक्त मन में ही अनुभूति की सीमा ज्ञात होती है और अनुभूति पर गहराई से विचार करने तथा उसके रहस्य समझने का सामर्थ्य जगता है। यही मोक्ष के लिए पात्र बनाता है। तब ही वेदान्त ज्ञान का महत्व भी समझ में आता है। उसके उपरान्त ही श्रवण और मनन अर्थवान होता है।

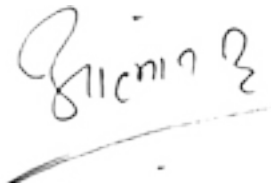

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

वेदान्त ज्ञान की पात्रता

वेदान्तज्ञान की पात्रता

हर व्यक्ति जीवन में कृतार्थ, पूर्ण होना चाहता है। अज्ञानवश अपने प्रयास व चेष्टा के फलस्वरूप प्राप्त बाह्यविषयक अनुभूति से कृतार्थ होने की धारणा से युक्त है। अतः जीवनभर सतत नई नई अनुभूतियां प्राप्त करने के लिए लालायित होकर समस्त प्रयास, चेष्टादि करते है। समस्त अनुभूति किसी न किसी वस्तु, व्यक्ति व परिस्थिति पर आश्रित, क्षणिक, अस्थायी होती है।

वेदान्तज्ञान की पात्रता

अतः यह विचारणीय कि क्या अनुभवकर्ता के प्रयास से मोक्षप्राप्ति, कृतार्थता हो सकते है! अनुभूति का अपना महत्व है; किन्तु उसकी गहराई में प्रवेश कर विचार करने पर अपनी धारणा के विपरीत कुछ तथ्य अनुभव होते है। १. प्रयासजनित अनुभूति कृतार्थ नहीं करती है। २. हमारी इन प्रयासजनित अनुभूति की प्रेरणा के पीछे उसकी हेतुभूत एक अनुभूति जो प्रयासरहित, सहज है। यह अनुभूति स्टार्टिंग पाइण्ट है, इसमें क्षूद्रता, छोटेपन की घूटन, संताप की अनुभूति है। उसे दूर करने के लिए ही अन्य अनुभूति की इच्छा होती है। ३. स्वर्गतुल्य दिव्य अनुभूतियां करने पर भी अपने प्रयासों से क्षूद्रता व छोटेपन की अनुभूति समाप्त नहीं होती है। अन्य अनुभूतियां स्थायीरूप से कृतार्थ नहीं करती है।

वेदान्तज्ञान की पात्रता

जो इससे शिक्षा लेता है, वह छोटेपन, दीनता,असुरक्षा आदि को दूर करने के लिए बाह्य अनुभूति हेतु लालायित व आश्रित नहीं होता। ईश्वरेच्छा से प्राप्त परिस्थिति को प्रसादवत् स्वीकार कर प्रसन्न रहता है। अनुभूति के रहस्य को जैसे जैसे समझते जाते है, वैसे वैसे भोक्तृत्व समाप्त होता जाता है। नई अनुभूति हेतु संकल्पपूर्वक चेष्टा नहीं होती। इससे मन फ्री होकर विचार हेतु उपलब्ध होने लगता है। तब अन्तर्मुख होकर आधारभूत सहज अनुभूति पर ध्यान केन्द्रित करते है और यह तथ्य दीखता है कि हमारे अन्दर

'अनुभूति के रहस्य को समझने से भोक्तृत्व की समाप्ति होती जाती है।'

वेदान्तज्ञान की पात्रता

कमी की अनुभूति भी सदैव नहीं रहती है। इष्ट की प्राप्ति में रसास्वादन के क्षणों में छोटेपन की अनु० कुछ क्षण के लिए भी सही किन्तु खतम होती है।

'प्रयासजनित अनुभूति से कभी भी कृतार्थता नहीं होती है।'

अतः पुरुषार्थ अनुभव के लिए नहीं किन्तु अपूर्णता की अनुभूति के रहस्य को जानने के लिए होता है। यह ज्ञानप्रधान पुरुषार्थ है। कर्म की समीक्षा करने पर जब यह दीखता है कि मनुष्य के संकल्प, पुरुषार्थजनित अनुभूति विफल हो रही है तो कर्मप्रधान पुरुषार्थ से मुक्त होते हैं। अब निर्वेद को प्राप्त करके समझने के लिए समय, उर्जा व अवकाश होता है और सब से मुक्त होकर विनम्र जिज्ञासु

वेदान्तज्ञान की पात्रता

होते हैं। तब ज्ञानवान की सन्निधि की प्रार्थना तथा उसके ज्ञान के लिए निवेदन करते हैं। इस प्रकार अनुभूति के लिए लालायित होकर प्रवाह में बहने के बजाय, उसके रहस्य को समझने की चेष्टा ही वेदान्त का पात्र बनाती है।

वेदान्त के अधिकारी के द्वारा ही गुरुमुख से किया गया शास्त्र का श्रवण फलित होता है।

'अनुभूति के रहस्य को समझने पर ही वेदान्तज्ञान का अधिकारित्व प्राप्त होता है।'

हाथों का भूषण कंगन नहीं
– किन्तु सेवा और दान है।

कर्ण का भूषण कुण्डल नहीं,
– प्रभु की कथा-महिमा का श्रवण है।

वीरों का भूषण बाहुबल ही नहीं
– किन्तु क्षमा है।

ब्रह्मचारी की शोभा शिखा-सूत्र मात्र से नहीं,
– किन्तु नियम पालन और संयम से है।

गृहस्थ की शोभा घर-परिवार से नहीं,
– किन्तु दान और सेवा से है।

वानप्रस्थ की शोभा निवृत्ति मात्र से नही,
– किन्तु प्रभु भजन से है।

संन्यासी की शोभा गेरुआ वस्त्र से नहीं,
– किन्तु ज्ञान और वैराग्य से है।

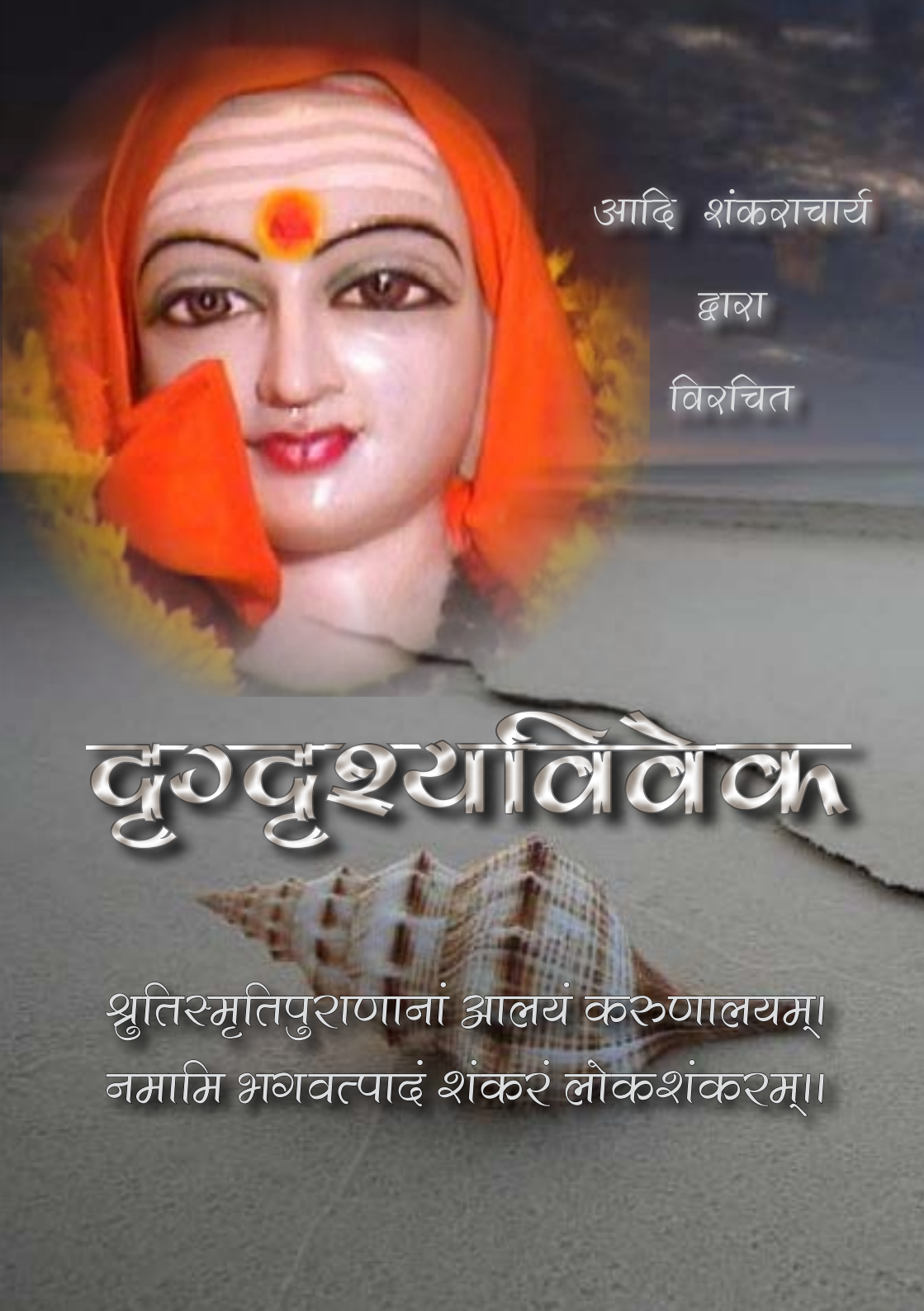
आदि शंकराचार्य
द्वारा
विरचित
दृग्दृश्यविवेक
श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

-श्लोक : २८-

अखण्डैकरसं वस्तु
सच्चिदानन्द लक्षणम्।
इत्यवच्छिन्न चिन्तेयं
समाधिर्मध्यमो भवेत्।।

'अखण्ड, एकरस,
सच्चिदानन्द स्वरूप
वस्तु ही ब्रह्म है' इस
प्रकार का अविच्छिन्न
चिन्तन मध्यम
समाधि है।

दृग्दृश्यविवेक

आचार्य नें २२ वें श्लोक से निदिध्यासन की चर्चा आरम्भ की। इसके अन्तर्गत छह प्रकार की समाधि बताई। पहले द्रष्टा सम्बन्धी में तीन समाधि के माध्यम से अपना ध्यान अपनी चेतनस्वरूपता की ओर ले जाकर, उन पर शास्त्र प्रतिपादित लक्षणाओं के द्वारा विचार किया। इसका पर्यवसान अपनी अखण्ड, अद्वयस्वरूपता में हुआ। उसके उपरान्त बाह्यदेश में समाधि का अभ्यास बताया गया।

दृग्दृश्य विवेक

बाह्य समाधि में वस्तु और उसमें विद्यमान अस्तित्व रूप पहलू को पृथक् किया जाता है। दृश्य वस्तु में एक नामरूपात्मक

'समस्त नामरूपात्मक जगत नश्वर और परप्रकाश्य होने से मिथ्या है।'

पहलू है और दूसरा उसमें विद्यमान सत्ता। नामरूप से सत्ता को पृथक करके उसके कान्षियस होना दृश्यानुविद्ध समाधि का अभ्यास है। जिस प्रकार किसी एक पदार्थ में अस्तित्व को नामरूप से पृथक् किया, उसी तरह समस्त ब्रह्माण्ड, जो भी दृश्य-नामरूपात्मक जगत है उन सब में नामरूप की विविधता के बावजूद सत्ता समान रूप से एक ही व्याप्त है। इस

दृग्दृश्य विवेक

प्रकार नामरूप की उपेक्षा अर्थात् उसके अस्थायी, परिवर्तनशील, क्षणिकता आदि रूप स्वभाव को देखने पर महत्वविहीन हो जाते हैं। और सब में समान रूप से व्याप्त सत्ता की संज्ञान होती है। यह दीखता है कि नामरूप के होने, उसमें विकार वा परिवर्तन होने पर वा उसके अभाव में भी सत्ता सदैव अविकारी, समान रूप से विराजमान रहती है। यहां तक अभ्यास करने के उपरान्त आचार्य यहां बाह्य धरातल पर मध्यमा अर्थात् शब्दानुविद्ध समाधि बता रहे

दृग्दृश्य विवेक

हैं। जिसमें अन्तःसमाधि की तरह ही विविध शास्त्रप्रदत्त शब्दरूप लक्षणाओं का प्रयोग किया जाता है। जब बाहर एक समान रूप से व्याप्त अस्तित्व का संज्ञान हुआ तो अन्तःसमाधि के द्वारा जिन साक्षी चेतना, अस्मि अर्थात् 'मैं हूं' की तरह निश्चय किया था, वह इनसे भिन्न है, यह कल्पना हो सकती है। अतः कहा कि, 'अखण्ड एकरसं.....।' बाहर और अन्दर का भेद उत्पन्न करनेवाली हमारी उपाधि है। जब उपाधि को भी नामरूपात्मक जगत की तरह जानकर उसे बाधित किया तो अब अन्दर, बाहर का भेद अर्थात् खण्ड भी समाप्त हो गया। अब एक अखण्ड एकरस सत्तामात्र है। यह सत्ता

'लक्षणाएं कोई परिभाषा नहीं होती है।'

दृग्दृश्य विवेक

ही सत्स्वरूप अर्थात् सदैव विराजमान, अबाधित तत्त्व है। इसे जानने वा प्रकाशित करनेवाली चेतना इनसे भिन्न होगी तो अन्योन्य बाधित हो जाएगी। अतः जो सत् स्वरूपता की तरह विराजमान है वही चित् स्वरूप तत्त्व है। यहां समस्त भेद की समाप्ति होने से सच्चिदानन्द स्वरूप हम ही विराजमान है। हमसे अन्यत् किसी का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार शास्त्रोक्त लक्षणा पर विचार करके अपनी अखण्ड, सच्चिदानन्द स्वरूपता में स्थिति होना यह शब्दानुविद्ध, सविकल्प समाधि है।

गीता मननम्

गीता अध्याय : 6

आत्मसंयम योग

आत्मसंयम योग

गीता के छठे अध्याय का नाम आत्मसंयम योग है। इस अध्याय में ४७ श्लोक है। इसे ध्यानयोग नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस अध्याय में भगवान ध्यान के रहस्य को उद्घाटित करते हैं। ध्यान का सामर्थ्य सब के पास होता है, उसे परिष्कृत मात्र करना होता है। साथ ही अध्यात्मपथ पर ध्यान की दिशा क्या होनी चाहिए? कर्मक्षेत्र में रहते रहते मन को मुक्त कर पाना कर्मसंन्यासयोग है।

आत्मसंयम योग

जीवन के उतार-चडाव में भी विक्षेपादि का अभाव हो। हम ईश्वर के निमित्त बनकर पाएं। प्रत्येक परिस्थिति आध्यात्म विकास के लिए सहायक होती है। उसमें विचारशीलता, धैर्य व समत्व का परिचय देना है। कर्मक्षेत्र को मन में सतत सुन्दर

'भगवान के जन्म-कर्म की दिव्यता का हेतु उनका अलौकिक ज्ञान है।'

गुणों के आविर्भाव हेतु साधन बना सकते है। अपने अन्दर योगयुक्त रहने का प्रयास अर्थात् मन में समत्व तथा अपने यथार्थ रूप ईश्वर है, इस श्रद्धा से युक्त होना, उसकी सतत अवेरनेस बनी रहें; उसे भी योगी कहते हैं।

आत्मसंयम योग

उसमें लक्ष्य, चुनौति तथा मन के रवैये से सम्बद्ध, सकारात्मक व विश्वासयुक्त होना है। बाह्य क्षणिक, नश्वर जगत विषयक लक्ष्य रखना अविवेक है। अतः हर परिस्थिति में समत्व से युक्त रह सकते है। यह कर्मयोग रूप बहिरंग साधन का विषय है। अध्यात्मयात्रा हेतु अब अन्तरंग साधना बताई जाती है। इसमें मन को

> 'बाह्य क्षणिक, नश्वर जगत के विषयों को जीवन का परं लक्ष्य समझना अविवेक का सूचक है।

शान्त व प्रसन्न करके अपनी ओर मोड़ा जाता है। शास्त्र और गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान के माध्यम से विचार किया जाता है। अतः ध्यान का प्रयोजन भी आत्मज्ञान में स्थिति है।

आत्मसंयम योग

किसी निर्विचारता की अवस्था को प्राप्त करना या जप आदि से कहीं तल्लीन हो जाना यह ध्यान के लिए सहायक है किन्तु ध्यान नहीं है। ध्यानस्य पर्यवसान अपनी वास्त में जगना है। स्वयं को छोटा दीनहीन मानकर अन्तहीन इच्छा के पीछे छोटेपन असुरक्षितादि की धारणा विद्यमान है। कुछ

'कर्मक्षेत्र योगयुक्त बनाता है।'

भी प्राप्त होने पर भी पूर्ण व कृतार्थ नहीं होते है। अतः खुले मन से चिन्तन करते हुए अपनी वास्तविकता की ध्यान देना होता है। अन्ततः मैं के सत्य को देखना व उसके कान्शियस होकर उसमें स्थित होना है।

आत्मसंयम योग

जिसका मन कर्मयोग से शान्त, समत्वयुक्त, निश्चिंत व निरपेक्ष होता है वही अपने साथ बैठकर विचार करने में समर्थ होता है। अन्यथा विविध विषयों के प्रति अपने आपसे पलायन करता रहता है। उसके लिए ज्ञान की सम्भावना खतम हो जाती है। अतः भगवान अध्याय के आरम्भ में कर्मयोग की स्तुति करते हैं कि 'अनाश्रितः कर्मफलं.....'

'योगयुक्त कर्म में रहते रहते कर्म से मुक्ति का अनुभव करता है।'

व्यवहार बाह्य चीजों पर आश्रित होकर कर्म न करें, किन्तु समर्थ व प्रभु के सेवक बनकर करें। कर्म में प्रेरणा अन्य की खुशी व कल्याण की हो। आश्रित होकर कर्म करनेवाला कमजोर व बाह्य

आत्मसंयम योग

विषय से ही तृप्त होने की धारणा से युक्त है। प्रसन्नता से यज्ञभाव से युक्त कर्म करने पर मन सतत निर्मल होकर विकार समापत होते जाते हैं। जो अनाश्रित होकर कर्म करता है, वही संन्यासी, वही योगी है। निरग्नि वा अक्रिय मात्र होना संन्यास का लक्षण नहीं है। यद्यपि अग्नि का त्याग कर्तव्यों से मुक्त का सूचक। इस प्रकार पहले कर्मयोग की स्तुति करते हैं। क्योंकि संन्यास वही है कि जिसने संकल्पों का त्याग किया है। योगी भी अपेक्षा आदि का त्याग करता है।

'ज्ञानप्राप्ति हेतु मन पूर्णतया संन्यस्त होना चाहिए।'

आत्मसंयम योग

भगवान के प्रति श्रद्धा से समर्पण की वजह से समस्त संकल्पों का त्याग हो जाता है। तथा बाह्य जगत की क्षणिकता, नश्वरता के सचेत होने से पराधीनता त्यागते है।

इस प्रकार जब कर्मयोग की भावना से कार्य करने से बलवान, सशक्त होता जाता है। वह सर्वसंकल्प संन्यासी वही योगारूढ है; वही ज्ञान के लिए पात्र बनता है। क्योंकि संकल्प का त्याग ही संन्यास है। उसके उपरान्त अपने अन्दर विवेक, प्रेरणा को जगाना है। यही कर्मयोग का प्रयोजन है।

'कर्मयोग का प्रयोजन योगारूढ होकर ज्ञान के लिए पात्र बनना है।'

आत्मसंयम योग

भगवान कहते हैं कि हम ही अपने मित्र तथा हम ही शत्रु हैं। हमें ही अपने मन को सुन्दर, समत्वयुक्त बनाना होता है। इसीसे सर्वांगिण कल्याण होता है। जो ऐसा योग बनता है उसके मन-इन्द्रियां शान्त होते हैं, वह प्रशान्त रहता है। हर द्वन्द्वों में निरपेक्ष होने से विक्षेप रहित होता है।

'आत्मैव आत्मनो बन्धुः
आत्मैव रिपुरात्मनः।'

वह शास्त्र और गुरु से ज्ञान प्राप्त करके शरीरादि को सुन्दर, स्वस्थ संवेदनशील बनाकर अन्तर्यात्रा अच्छी तरह करता है। वह शत्रु-मित्रादि सब के प्रति समानभाव से युक्त होता है।

आत्मसंयम योग

बहिरंग साधना के बारे में बताने के उपरान्त दसवें श्लोक से भगवान अन्तरंग साधना की चर्चा आरम्भ करते हैं। मैं की दिव्यस्वरूपता की श्रद्धा से युक्त होकर कि मैं साक्षात परमात्मा का अंश हैं। उस मैं विषयक जिज्ञासा से युक्त होकर

'ईश्वर को कर्मफलदाता देखने से फलविषयक निश्चिन्तता हो जाती है।'

योगी उसकी ओर मोड़ता है। उसके लिए एकान्त में रहते हुए, शान्ति से अपने साथ बैठ पाएं। एकान्त स्थान व समय हो किन्तु वास्तविक एकान्त अपने आपके साथ रहना है। जो इच्छा बहिर्मुख व पराधीन बनाएं, उसे किनारे करके मैं के सत्य को ही जानने की प्रधानता दें।

आत्मसंयम योग

अपने अन्दर सुखी, धन्यता से युक्त, दीनतारहित होकर प्रवेश करें। तब ही अन्तर्यात्रा सुगम होती है। शरीर, इन्द्रियादि को शान्त तथा मन भी स्थिर होता है। मन को एकाग्र कर, इन्द्रियादि को शान्त करके आत्माभिमुख हो जाएं। अनेकों चीजों की संज्ञान बनी हुई है, किन्तु एक के प्रति महत्व होने पर अन्य वृत्ति समाप्त होती है। एक का महत्व बना रहे, उसीमें ध्यान हो। उसके लिए आरम्भ में धारणा का अभ्यास करना चाहिए। उससे चंचलता समाप्त होती है।

'ईश्वर के निमित्त बनकर कर्म करने से कर्मबन्धन से मुक्त होते जाते हैं।'

आत्मसंयम योग

अब भगवान कुछ मूल्य देते हैं। भगवान के प्रति श्रद्धा की दृढ़ता की वजह से भयरहित, प्रसन्नचित्त होकर स्थित रहें। बाह्य भोगवृत्ति का अभाव हो। अविवेक व मोह की वजह से ही कामना का साम्राज्य होता है। शान्त बैठकर परमात्मा में मन -बुद्धि अर्थात् भावना व विचार दोनों परमात्मा के दिव्यांश मैं की ओर मोडें। इस प्रकार योगी शान्त मन से उसमें स्थित रहें। भगवान बहुत करुणा से प्रेरित होकर छोटी छोटी चीजों का भी मार्गदर्शन दे रहे हैं कि भोजन, आहार, विहार, निद्रा आदि सब में सन्तुलन स्थापित करें। अन्यथा योग सम्भव नहीं होगा।

'भोगवृत्ति व स्वार्थ ही मन में विक्षेप व भय का हेतु है।'

आत्मसंयम योग

इस प्रकार अपने चित्त को नियंत्रित करके मैं की तरफ मोडकर, चिन्तन करना यही लक्ष्य है। उससे इन्द्रियातीत, आत्यन्तिक सुख का प्रसाद प्राप्त होता है।

भगवान योग की विलक्षण परिभाषा देते हुए कहते हैं कि, ' तं विद्यात् दुःखसंयोग

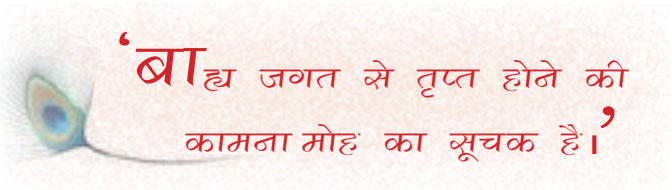

वियोग योगसंज्ञितम्।' अर्थात् उसे ही योग जाने जहां अनेकानेक से संयोग, तादात्म्यादि समाप्त हो। उसे निश्चयपूर्वक साधना चाहिए। इस प्रकार मैं की वास्तविकता को जानकर उसमें जगे और उसमें स्थित रहें। यदि कहीं किसी विषयक अभी महत्व बना हुआ है तो

आत्मसंयम योग

यदा कदा मन वहां जाएगा। किन्तु उससे खिन्न हुए बगैर धैर्यपूर्वक उपराम होना चाहिए। पुराने संस्कार व मूल्यवशात मन जाता है, उसमें ग्लानि अनुभव न करें। हमने स्वयं ही संकल्प व अविवेक से उसका महत्व उत्पन्न किया था। इसलिए हम उससे निपट सकते हैं।

'अनेकों अनात्म पदार्थों से तादात्म्य समाप्त करना ही योग है।'

ऐसा योगी को विरज, परं शान्ति, आनन्द प्राप्त होता है। ब्रह्मज्ञान में वही जग जाते है। जैसे जैसे चेतना को आत्मा समझने लगते हैं तो व्यावहारिक परिवर्तन कि मैं की परिभाषा परिवर्तित होने लगती है। अज्ञानी से विलक्षण विवेकी स्वयं को शरीर में विराजमान जीवनतत्त्व देखता है। हम

आत्मसंयम योग

वो चेतना जो अब शरीरमात्र में संकुचित नहीं किन्तु सब हममें ही विराजमान है। मुझ चेतना के आकाश में विविध नामरूप विराजमान है। इस प्रकार ध्यान करने पर उदारता, प्रेम आदि सहजरूप से होता है। वह योगी सब को अपनी आत्मा की तरह देखकर संवेदनायुक्त होता है। वह परमयोगी है।

'राग-द्वेष व अपेक्षाओं से मुक्त होना, संन्यस्तता की दिशा में यात्रा है।'

यह सुनकर अर्जुन अत्यन्त प्रेरित हो गया किन्तु साथ ही उसे अपने मन की चंचलता, विक्षेप का भान हुआ। अतः अर्जुन प्रश्न करता हैं कि, भगवन्! हमारा मन बहुत चंचल है, उसे वश में करना वायु को नियंत्रित करने जैसे लगता है।

आत्मसंयम योग

'योगयुक्त का जीवन अहं की संतुष्टि और स्वार्थरहित होता है।'

उसके उत्तर में भगवान बताते हैं कि, 'हे महाबाहो! निःसंदेह, मन जीवन्त है, इसलिए चंचल है। किन्तु उसे निग्रहीत करना असम्भव नहीं है। अभी तक उर्जा को दिशा प्राप्त नहीं थी, इसलिए अब विवेकपूर्वक उसे लक्ष्य प्रदान करते हुए दिशा निर्धारित करना चाहिए। और उसका अभ्यास करना चाहिए। यद्यपि मन आदतवशात् व महत्वबुद्धि की वजह से विषयों की ओर जाएगा। उसे अभ्यास और वैराग्य के द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए।

आत्मसंयम योग

अर्जुन के मन में पुनः प्रश्न उठा कि यदि हमने लक्ष्य रखकर, उसकी ओर अग्रसर भी हुए किन्तु जीवनयात्रा उसके बीच में ही समाप्त हो जाने पर क्या हमारे प्रयास विफल हो जाएंगे?

'न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।'

भगवान बताते हैं कि जो इस कल्याण के पथ पर चलता है, ऐसे कार्य के लिए अग्रसर होता है, उसका कभी दुर्गति नहीं होतीत है। न ही विनाश की सम्भावना होती है। अन्तिम समय में यदि लक्ष्यसिद्धि नहीं हुई तो दो सम्भावना होती है। १ लक्ष्य स्पष्ट नही, वैराग्य का अभाव है। अथवा अभ्यास की कमी है। उस योगभ्रष्ट में यदि अभ्यास की कमी है, तो अग्रजन्म में योगी के घर में जन्म होता है, जो कि

आत्मसंयम योग

उसके विकास हेतु सहायक होती हैं। अतः लक्ष्य का निर्धारण करके उसके लिए अभ्यास व वैराग्य से युक्त, आत्मविश्वास के साथ समर्पित होना चाहिए। तब ही अपनी ब्रह्मस्वरूपता में जाग्रति रूप महान लक्ष्य की यात्रा सम्भव होती हैं। इति

गीता अध्याय - ६

आत्मसंयम योग / श्लोक संख्या - ४७

अर्जुन - ५ श्लोक / भगवान श्रीकृष्ण - ४२

गीता के छठे अध्याय का नाम आत्मसंयम योग है। उसे ध्यानयोग के नाम से भी जाना जाता है। इस अध्याय में भगवान ध्यान के लिए बहिरंग साधन कर्मयोग की स्तुति करके अन्तरंग साधन ध्यान के बारे में बताते है।

ध्यान का अर्थ अपने स्वस्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करके उसका संज्ञान होता है। न कि किसी विषयविशेष का ध्यान करके उसमें तल्लीन होना है।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—१२—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

धनुषयज्ञ स्वयंवर में आए हुए समस्त राजाओं के विफल होने पर महाराज जनक की वाणी में घोर अनौचित्य का अनुभव लक्ष्मणजी को हो रहा था। जब आक्रोशयुक्त स्वर में राजाओं की पौरुषहीनता की निन्दा करते हुए कहा था कि, 'यदि मुझे यह ज्ञात होता कि पृथ्वी वीरों से शून्य हो चुकी है तो प्रतिज्ञा के द्वारा उपहास का पात्र न बनता।' इस तरह उनकी वाणी में निराशा, आक्रोश अनादर का मिला-जुला स्वर विद्यमान था।

श्री लक्ष्मण चरित्र

महाराज जन की वाणी से लक्ष्मण का विक्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। व्यावहारिक या पारमार्थिक किसी भी दृष्टि से उन्हें विदेह की वाणी में औचित्य की प्रतीति नहीं हुई। जनक एक तत्त्ववेत्ता के रूप में विश्वविख्यात थे, किन्तु लक्ष्मण को उनकी वाणी में उसकी कोई झलक नहीं दिखाई दी। उन्हें लगा कि व्यावहारिक दृष्टि से यह रघुवंश परम्परा का अनादर है। साधारण आहूत अतिथि से भी यह कहना कि 'अपने घर वापस जाओ' अपमान की पराकाष्ठा है। फिर महर्षि विश्वामित्र के साथ आए रघुवंश-शिरोमणि रामभद्र के सभा में होते हुए इस तरह के वाक्य का प्रयोग अशिष्टता की पराकाष्ठा है। पारमार्थिक दृष्टि से लक्ष्मण को यह अविवेक की सीमा जैसा प्रतीत होता है। प्रथम दृष्टि में ही विदेह को ऐसा प्रतीत हुआ था कि राम

श्री लक्ष्मण चरित्र

साक्षात् ब्रह्म हैं। जनक के इस विवेक से रामानुज भी प्रभावित हुए थे। उन्हें लगा कि एक ही क्षण में ईश्वर को पहचान लेने वाले वैदेही सत्य को कैसे नहीं देख सकें! यदि वे उनके स्वरूप से परिचित हैं तो निराशा और चिन्ता का प्रश्न ही कहां है? फिर तो स्वयं प्रभु से यह कहना चाहिए था कि आप कृपा करके धनुर्भंग के माध्यम से मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करें।

ऐसी स्थिति में लक्ष्मण ने जिस आवेश-भरी वाणी में जनक की आलोचना की, उसके औचित्य को लेकर कभी कभी कुछ लोगों के द्वारा प्रश्नचिह्न लगाया जाता है, और फिर भाषण का उत्तरार्ध तो अत्यन्त अमर्यादित सा प्रतीत होता है। यदि रामानुज के वाक्यों को केवल बहिरंग अर्थों में लें, तो यह आरोप असंदिग्ध रूप से यथार्थ प्रतीत होता है। परन्तु पूरे प्रसंग की गहराई में जाने

श्री लक्ष्मण चरित्र

पर यह स्पष्ट होता है कि यही एक ऐसा प्रसंग है जहां उनकी आवेश और ओजभरी वाणी ने महर्षि विश्वामित्र और साक्षात् प्रभु राम को भी पुलकित कर दिया और यह पुलकित होना भी केवल एक बार ही नहीं हुआ। मुनि मण्डली से लेकर श्रीरामभद्र तक बार बार रोमांचित होते हुए आनन्दातिरेक का अनुभव करते हैं। उनकी इस वाणी से जिन लोगों को सर्वाधिक प्रसन्नता की अनुभूति हुई, उनमें मिथिलेशनन्दिनी सीता का स्थान सर्वप्रथम है। यद्यपि आरम्भ में लक्ष्मण श्रीराम से धनुर्भंग का आदेश मांगते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु उनके अन्तरंग में लक्ष्मण जी में कहीं पर भी कामना की छाया का भी अस्तित्व नहीं था। वे तो वैराग्य के घनीभूत रूप निष्कामता की पराकाष्ठा हैं।

बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की शुभकामनाएं

जीवन्मुक्त

–१६–

ऋषीकेश

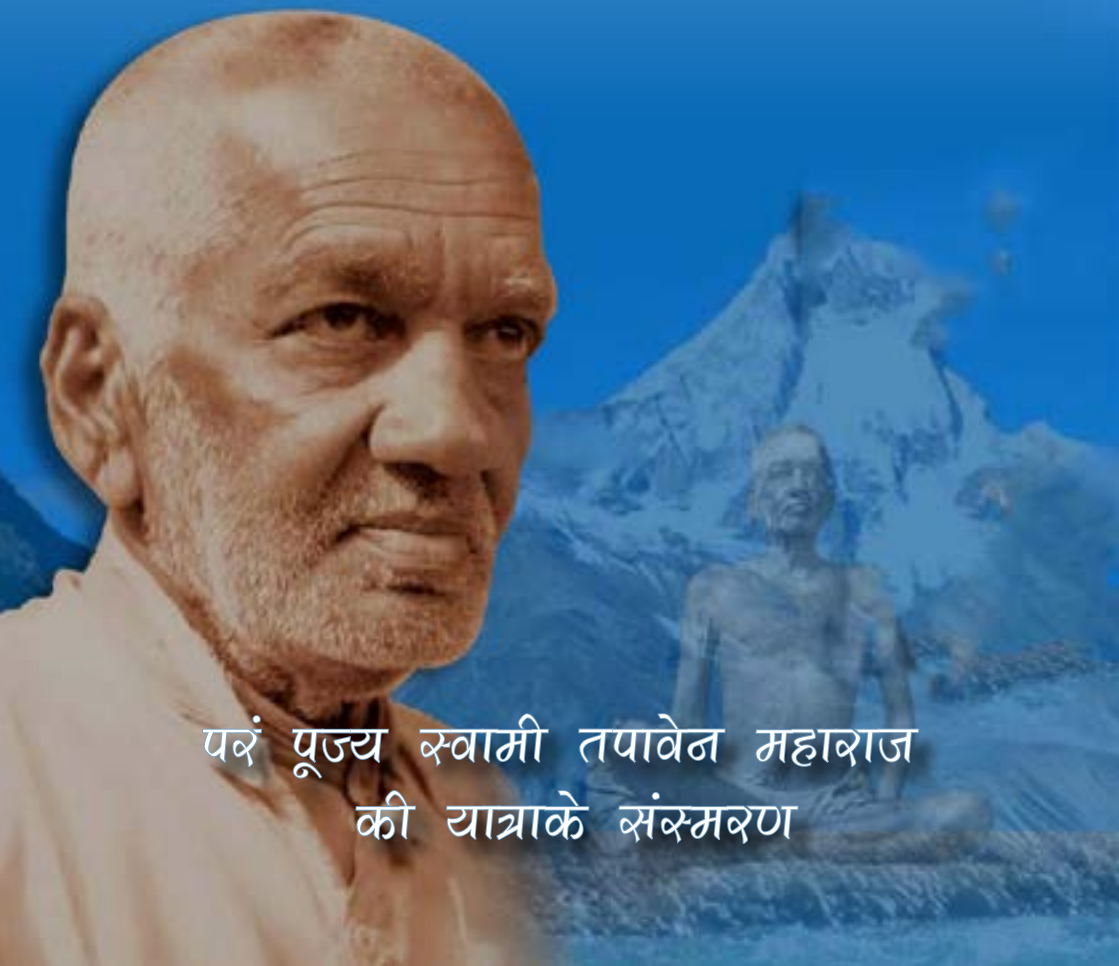

परं पूज्य स्वामी तपावेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त

लीजिएं, अब दूसरी ओर देखिएं। वन कुक्कुट और वन मयूर धीरे धीरे चलते हुए जो भी अन्नकण मिल जाते है, उन्हें इच्छानुसार चोंच मारकर चुग लेते है। 'यह नही', 'वह नही' की शिकायत किये बिना और दरिद्रता का स्वप्न में भी अनुभव किये बिना संतोष के साथ जीवन बितानेवाले ये बडे ही सुकृती है। लेकिन दूसरी तरह के छोटे पक्षियों का एक समूह क्षुधा से पीडित हो, खाने की इच्छा में इस वन में खाना पाये बिना, दूर

जीवन्मुक्त

देशों की ओर आकाश मार्ग से शीघ्रता से उडता जा रहा है। दूसरे कुछ पक्षी खाद और वल्मीकों में स्वेच्छापूर्वक आनंद करनेवाले कीडे मकोंड़ों तथा पिपीलिकाओं को निगल जाने मे लगे है। शिव! शिव! इनको इतना पता नही है कि ये इन छोटे मोटे जीवों को खा जाते है तो इनसे बडे जीव कभी इन्हें भी खा जाएंगे।

"अहस्तानि सहस्तानाम् अपदानि चतुष्पदाम् फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम्।" यह सर्वत्र प्रचलित ईश्वरीय मर्यादा की महिमा समझना कितना कठिन है! लीजिए, ये दूसरे कुछ विहंग आहार-विहार से विराम पाकर, उंचे वृक्षों की शाखाओं पर बैठे दीर्घ स्वर में मधुर गान अलापते संतोष का अनुभव कर रहे है। वन में सर्वाधिपत्य जमाने वाले राजा कहां है? जान पडता है कि व्याघ्रादि जन्तु मानो

जीवन्मुक्त

यह समझकर अपने घरों में ही विलीन बैठे हैं कि अपना अधिकार जमाने का यह समय नही हैं, और इसीलिए वे बाहर आकर अपना प्रभाव प्रकट नहीं करते। इस प्रकार मनुष्य समाज में जो विषयभोग विषयक नैमित्तिक कलह, सांपत्तिक दरिद्रता, जन्म-मरण, राजस्व प्रजात्वादि व्यवहार दिखायी देते है, वही इस प्राणीसमाज में भी अनवरत होते रहते है।

ऐसे समाज में होनेवाली ऐसी बातें ही तो समाचार पत्र सुनाते रहते हैं। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने में जो पुरुष समर्थ हैं; उसकी बुद्धि में सारा संसार सभी चेष्टाओं के साथ उपस्थित हो जाता है; और यदि उपस्थित हो जाता है तो उसे परोक्ष लोकवार्ताएं पढ़ने की क्या आवश्यकता? प्रतिदिन तीन बार निकलनेवाला पत्र भी कोई नया समाचार नहीं लाता है। जो हैं

जीवन्मुक्त

ही नहीं, वह होता भी नहीं हैं, और जो है उसके होने में किसी नवीनता के लिए स्थान भी नही है। प्रकृति के रहस्य को, दूसरी बातों में कहें तो ईश्वर की महिमा को जो नही जानता,उसके लिए तो सब नये और निराले है। पर प्रकृति रहस्य को जाननेवाले के लिए किसी में कोई नवीनता या आश्चर्य होता ही नही है। अच्छा! अब प्रकृत विषय पर आएं।

विभूति दर्शन

पौराणिक गाथा

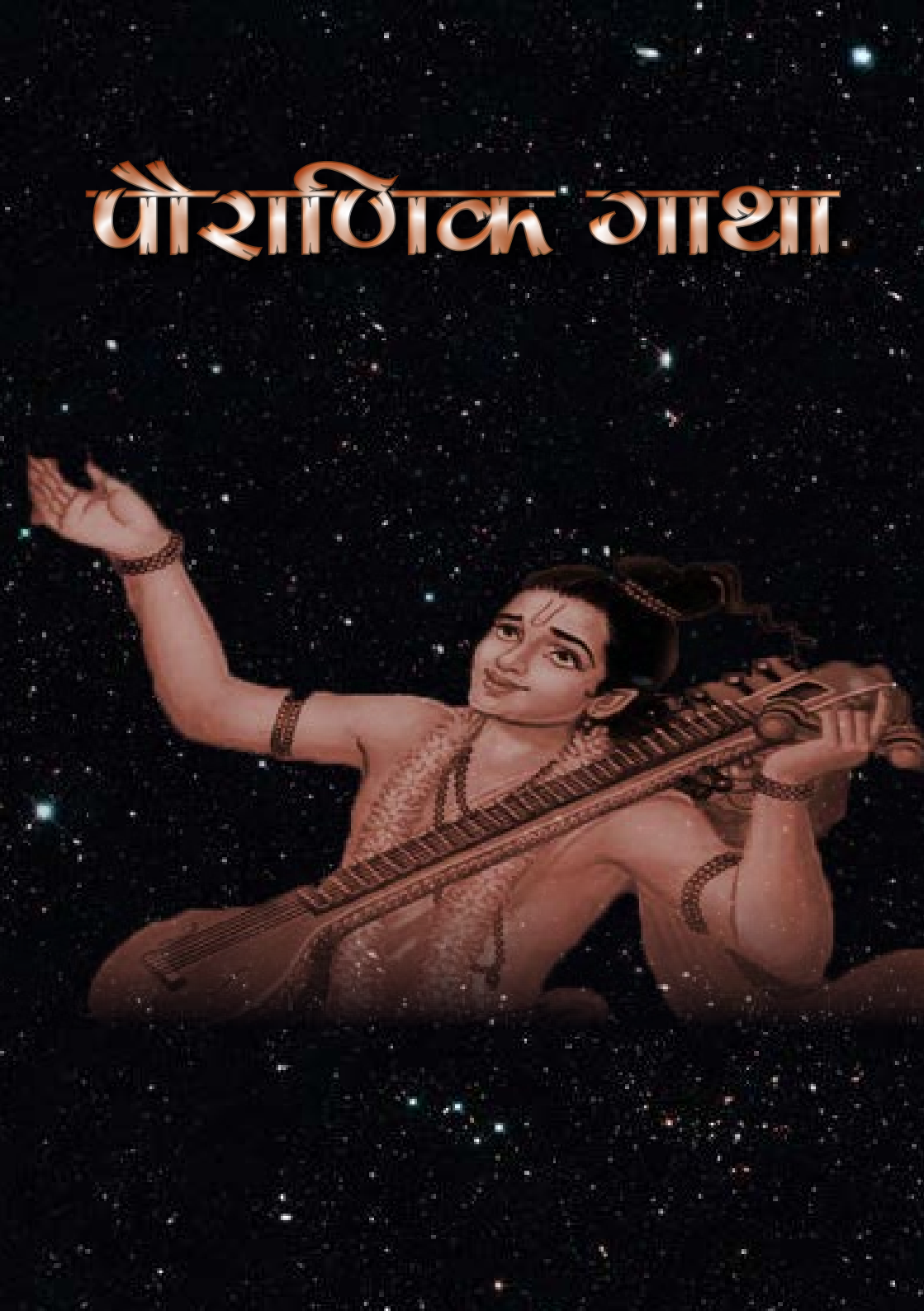

ययाति की भोगलालसा

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि ययाति अमरावती के राजा थे। राजा ययाति के असुरगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ विवाह किया था, उनसे दो पुत्र प्राप्त हुए थे। उसके उपरान्त देवयानी की दासी शर्मिष्ठा से गन्धर्वविवाह करने पर उनसे तीन पुत्र प्राप्त हुए थे।

राजा ययाति के शर्मिष्ठा के साथ गन्धर्वविवाह की बात शुक्राचार्य को ज्ञात होने पर उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर राजा ययाति को वृद्ध हो जाने का शाप दे दिया।

ययाति की भोगलालसा

ययाति उसी क्षण वृद्ध हो गए और उनकी सब शक्तियां, सामर्थ्य क्षीण हो गएं। किन्तु उनके मन में काम वासनाएं वैसी की वैसी बनी हुई थी। अपना यौवन छीन जाने के बाद ययाति बहुत कामवासना की पीपासा और बडी पीडा से गुजर रहे थे। वासना का बोज उनके मन पर ऐसा हावि था कि अब उन्हें राजकाज कुछ भी नहीं सुज रहा था।

एक दिन मृत्यु उनके द्वार पर आकर खड़ी हो गई। यमराज ने कहा कि, अब तुम्हारा समय आ गया है, मैं तुम्हें लेने आया हूं।' किन्तु ययाति का जीवन के प्रति ऐसा मोह था कि इतनी पीडा के बावजूद वे मरना नहीं चाहते थे। उन्होंने यमराज से कहा कि मेरा शरीर वृद्ध हो गया है किन्तु मैं अभी भी युवा हूं।, अभी मेरे मन में बहुत कुछ भोग की लालसा

"भोग भोगने से इच्छा की समाप्ति नहीं होती है।"

ययाति की भोगलालसा

है। मैं मरना नहीं चाहता; शाप के कारण मैं भोगों से वंचित हो गया हूं। कृपया मुझे जीवतदान दीजीएं। यम ने पहले तो इन्कार कर दिया कि, ययाति! ऐसा नहीं हो सकता। सब का एक निश्चित समय होता है। उसके उपरान्त उसे मरना ही पडता है। तब भी ययाति ने बहुत गिडगिडते हुए कहा, 'आप मृत्यु के देवता है, आपके लिए क्या असम्भव है!'

यमराज ने कहा, 'ठीक है! एक उपाय है। यदि तुम्हारे पुत्रों में से तुम्हें कोई अपना यौवन प्रदान करे तो यह सम्भव है।' कामवासना और जीवन के प्रति मोह ने ययाति को इतना अन्धा कर दिया था कि उन्हें अपने पुत्रों के समक्ष यह प्रस्ताव रखने में किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ। जब उन्होंने अपने पुत्रों से युवावस्था की याचना की तो सब ने मना कर दिया। किन्तु शर्मिष्ठा के छोटे पुत्र पुरु ने अपनी पितृभक्ति का परिचय दिया। और वह यौवन देने को तैयार हो गया। यमराज को पुरु का इतना बड़ा त्याग देखकर आश्चर्य हुआ।

ययाति की भोगलालसा

उन्होने उनसे पूछा कि क्या तुम्हें इन भोगों को भोगने की इच्छा नहीं हो रही! तब पुरु ने कहा कि 'प्रभु! आज मैं अपने पिता की यह स्थिति देख रहा हूं कि, जीवनभर भोग भोगने के उपरान्त भी उससे तृप्त नहीं हुए है। उससे मैं समझ सकता हूं कि वास्तविक सुख का स्रोत यह नहीं हो सकता। अपने यौवन को पिताजी को सोपकर मैं सुख के स्रोत की खोज करना चाहता हूं।' यमराज ने उन्हें जीवतदान का वरदान देते हुए कहा कि तुम जितना चाहो, इतना जी सकते हो।

सौ वर्षो तक ययाति भोग भोगते रहे। अनेकों रानियां, दासियों के साथ काम उपभोग किया और उसे अनेंकों पुत्र हुए। किन्तु अभी भी अतृप्त ही थे। अब उनके शरीर में पुनः वृद्ध ावस्था का अनुभव होने लगा। तब फिर से अपने पुत्रों से युवावस्था की याचना की। किसी न किसी पुत्र ने उन्हें अपना यौवन दे दिया। यह

ययाति की भोगलालसा

क्रम दस बार दोहराया। इस प्रकार ययाति १००० वर्षतक जीवित रहकर भोग भोगते रहें। किन्तु उसके उपरान्त भी अभी भी उनको किसी प्रकार की तृप्ति का अनुभव नहीं हुआ तो अब उन्हें विषयवासना से घृणा हो गई। जब यमराज उनके पास आएं तो उनके सामने पश्चाताप करते हुए कहा कि 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता। तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः। कालो न याता वयमेव याता। तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।'

प्रभु! हमें यह अनुभव हो रहा है कि हमने भोग नहीं भोग हैं किन्तु भोगों ने ही हमें भोग लिया है। काल समाप्त नहीं हुआ किन्तु हम ही समाप्त हो गए। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई किन्तु हम ही जीर्ण हो गएं। हमने भोग वासनाओं के चक्कर में पडकर अपने पूरे जीवन को व्यर्थ गवां दिया। इस प्रकार बोलकर अपनी बची हुई आयु को पुरु को सोंपकर जंगल में तपस्या करने, अपने जीवन को सार्थक करने चले गएं।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

गुरु पूर्णिमा पर्व

गुरु परम्परा पूजन

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरु पूर्णिमा पर्व

पलक एवं विशाल द्वारा
पूज्य गुरुजी की पादुकापूजन

आश्रम समाचार

गुरु पूर्णिमा पर्व

२४ जुलाई २०२१

पादुका पूजन

आश्रम समाचार

गुरु पूर्णिमा पर्व

पूज्य गुरुजी की पादुका पूजन

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरु पूर्णिमा पर्व

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा उत्सव

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा उत्सव

२४ जुलाई २०२१

पूज्य गुरुजी के आशीर्वचन

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

पूज्य गुरुजी के आशीर्वचन

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

अन्त में आरती

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

२४ जुलाई
२०२१

आशीर्वाद लेते हुए

आरती एवं प्रसाद

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

मनमोहक दृश्य

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

पू. गुरुजी से आशीर्वाद लेते हुए

आश्रम समाचार

गुरुपूर्णिमा पर्व

२४ जुलाई २०२१

पू. गुरुजी से आशीर्वाद लेते हुए

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव

सायं पूजा एवं आरती

२४ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव

पूज्य गुरुजी से आशीर्वाद

आश्रम समाचार

नेन्सी को आशीर्वाद

आश्रम समाचार

नेन्सी का जन्मदिन

नेन्सी को आशीर्वाद

२३ जुलाइ २०२१

आश्रम समाचार

नेन्सी का जन्मदिन

पूज्य गुरुजी का पूजन

आश्रम समाचार

नेन्सी का जन्मदिन

आश्रम समाचार

नेन्सी का जन्मदिन

भजन एवं भोजन

आश्रम समाचार

नेन्सी का जन्मदिन

भण्डारा आयोजन

आश्रम समाचार

नेन्सी का जन्मदिन

बालविहार द्वारा

नृत्यप्रस्तुति

२३ जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

आश्रम परिवार सत्संग

जुलाई २०२१

आश्रम समाचार

आश्रम परिवार सत्संग

गुरु का महत्व

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

बाल विहार

क्राफ्ट क्लास

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

बालविहार

क्राफ्ट क्लास

आश्रम समाचार

बाल विहार

क्राफ्ट क्लास

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- ~ Sundar Kand Pravachan
- ~ Monthly Satsang Videos
- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Hanuman Chalisa

Audio Pravachans

- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Eksloki Chanting

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh ~ Aug '21

Vedanta Piyush ~ July '21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

सुन्दरकाण्ड महायज्ञ
(ओनलाईन)

१५ अगस्त से १५ अक्टूबर २०२१.

प्रतिदिन सायं ७.०० बजे

YouTube चेनल पर प्रसारण

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी द्वारा

प्रतिदिन प्रातः ७.०० बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन
(शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Visit the IVM Blog at :
Vedanta Mission Blog

Published by:
International Vedanta Mission

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati